क्या 2019 के चुनाव में मैं भी हार गया हूं

रवीश कुमार

23 मई 2019 के दिन जब नतीजे आ रहे थे, मेरे व्हाट्स एप पर तीन तरह के मैसेज आ रहे थे। अभी दो तरह के मैसेज की बात करूंगा और आखिर में तीसरे प्रकार के मैसेज की। बहुत सारे मैसेज ऐसे थे कि आज देखते हैं कि रवीश कुमार की सूजी है या नहीं। उसका चेहरा मुरझाया है या नहीं। एक ने लिखा कि वह रवीश कुमार को ज़लील होते देखना चाहता है। डूब कर मर जाना देखना चाहता है। पंचर बनाते हुए देखना चाहता है। किसी ने पूछा कि बर्नोल की ट्यूब है या भिजवा दें। किसी ने भेजा कि अपने शक्ल की तस्वीर भेज दो ज़रा हम देखना चाहते हैं। मैंने सभी को जीत की शुभकामनाएं दीं। बल्कि लाइव कवरेज़ के दौरान इस तरह के मैसेज का ज़िक्र किया और ख़ुद पर हंसा। दूसरे प्रकार के मैसेज में यह लिखा था कि आज से आप नौकरी की समस्या, किसानों की पीड़ा और पानी की तकलीफ दिखाना बंद कर दीजिए। यह जनता इसी लायक है। बोलना बंद कर दो। क्या आपको नहीं लगता है कि आप भी रिजेक्ट हो गए हैं। आपको विचार करना चाहिए कि क्यों आपकी पत्रकारिता मोदी को नहीं हरा सकी। मैं मुगालता नहीं पालता। इस पर भी लिख चुका हूं कि बकरी पाल लें मगर मुगालता न पालें।

2019 का जनादेश मेरे ख़िलाफ कैसे आ गया? मैंने जो पांच साल में लिखा बोला है क्या वह भी दांव पर लगा था? जिन लाखों लोगों की पीड़ा हमने दिखाई क्या वह ग़लत थी? मुझे पता था कि नौजवान, किसान और बैंकों में गुलाम की तरह काम करने वाले लोग भाजपा के समर्थक हैं। उन्होंने भी मुझसे कभी झूठ नहीं बोला। सबने पहले या बाद में यही बोला कि वे नरेंद्र मोदी के समर्थक हैं। मैंने इस आधार पर उनकी समस्या को खारिज नहीं किया कि वे नरेंद्र मोदी के समर्थक हैं। बल्कि उनकी समस्या वास्तविक थी इसलिए दिखाई। आज एक सांसद नहीं कह सकता कि उसने पचास हज़ार से अधिक लोगों को नियुक्ति पत्र दिलवाया है। मेरी नौकरी सीरीज़ के कारण दिल्ली से लेकर बिहार तक में लोगों को नियुक्ति पत्र मिला है। कई परीक्षाओं के रिज़ल्ट निकले। उनमें से बहुतों ने नियुक्ति पत्र मिलने पर माफी मांगी की वे मुझे गालियां देते थे। मेरे पास सैंकड़ों पत्र और मेसेज के स्क्रीन शाट पड़े हैं जिनमें लोगों ने नियुक्ति पत्र मिलने के बाद गाली देने के लिए माफी मांगी है। इनमें से एक भी यह प्रमाण नहीं दे सकता कि मैंने कभी कहा हो कि नरेंद्र मोदी को वोट नहीं देना। यह ज़रूर कहा कि वोट अपने मन से दें, वोट देने के बाद नागरिक बन जाना।

पचास हज़ार से अधिक नियुक्ति पत्र की कामयाबी वो कामयाबी है जो मैं मोदी समर्थकों के द्वारा ज़लील किए जाने के क्षण में भी सीने पर बैज की तरह लगाए रखूंगा। क्योंकि वे मुझे नहीं उन मोदी समर्थकों को ही ज़लील करेंगे जिन्होंने मुझसे अपनी समस्या के लिए संपर्क किया था। नौकरी सीरीज़ का ही दबाव था कि नरेंद्र मोदी जैसी प्रचंड बहुमत वाली सरकार को रेलवे में लाखों की नौकरियां निकालनी पड़ी। इसे मुद्दा बनवा दिया। वर्ना आप देख लें कि पूरे पांच साल में रेलवे में कितनी वेकेंसी आई और आखिरी साल में कितनी वेकैंसी आई। क्या इसकी मांग गोदी मीडिया कर रहा था या रवीश कुमार कर रहा था? प्राइम टाइम में मैने दिखाया। क्या रेल सीरीज़ के तहत स्वतंत्रता सेनानी एक्सप्रेस जैसी ट्रेन को कुछ समयों के लिए समय पर चलवा देना मोदी का विरोध था? क्या बिहार के कालेजों में तीन साल के बीए में पांच पांच साल से फंसे नौजवानों की बात करना मोदी विरोध था?

इस पांच सालों में मुझे करोड़ों लोगों ने पढ़ा। हज़ारों की संख्या में आकर सुना। टीवी पर देखा। बाहर मिला तो गले लगाया। प्यार दिया। उसमें नरेंद्र मोदी के समर्थक भी थे। संघ के लोग भी थे और विपक्ष के भी। बीजेपी के लोग भी थे मगर वे चुपचाप बधाई देते थे। मैंने एक चीज़ समझी। मोदी का समर्थक हो या विरोधी वह गोदी मीडिया और पत्रकारिता में फर्क करता है। चूंकि गोदी मीडिया के एंकर मोदी की लोकप्रियता की आड़ में मुझे पर हमला करते हैं इसलिए मोदी का समर्थक चुप हो जाता है। भारत जैसे देश में ईमानदार और नैतिक होने का सामाजिक और संस्थागत ढांचा नहीं है। यहां ईमानदार होने की लड़ाई अकेले की है और हारने की होती है। लोग तंज करते हैं कि कहां गए सत्यवादी रवीश कुमार। कहां गए पत्रकारिता की बात करने वाले रवीश कुमार। मुझमें कमियां हैं। मैं आदर्श नहीं हूं। कभी दावा नहीं किया लेकिन जब आप यह कहते हैं आप उसी पत्रकारिता के मोल को दोहरा रहे होते हैं जिसकी बात मैं कहता हूं या मेरे जैसे कई पत्रकार कहते हैं।

मुझे प्यार करते रहिए। मुझे ज़लील करने से क्या मिलेगा। आपका ही स्वाभिमान टूटेगा कि इस महान भारत में आप एक पत्रकार का साथ नहीं दे सके। मेरे जैसों ने आपको इस अपराध बोध से मुक्त होने का अवसर दिया है। यह अपराध बोध आप पर उसी तरह भारी पड़ेगा जैसे आज विपक्ष के लिए उसकी अतीत की अनैतिकताएं भारी पड़ रही हैं। इसलिए आप मुझे मज़बूत कीजिए। मेरे जैसों के साथ खड़े होइये। आपने मोदी को मज़बूत किया। आपका ही धर्म है कि आप पत्रकारिता को भी मज़बूत करें। हमारे पास जीवन का दूसरा विकल्प नहीं है। होता तो शायद आज इस पेशे को छोड़ देता। उसका कारण यह नहीं कि हार गया हूं। कारण यह है कि थक गया हूं। कुछ नया करना चाहता हूं। लेकिन जब तक हूं तब तक तो इसी तरह करूंगा। क्योंकि जनता ने मुझे नहीं हराया है। मोदी को जिताया है।

मुझे पता था कि मैं अपने पेशे में हारने की लड़ाई लड़ रहा हूं। इतनी बड़ी सत्ता और कारपोरेट की पूंजी से लड़ने की ताकत सिर्फ गांधी में थी। लेकिन जब लगा कि मेरे जैसे कई पत्रकार स्वतंत्र रूप से कम आमदनी पर पत्रकारिता करने की कोशिश कर रहे हैं तब लगा कि मुझे कुछ ज़्यादा करना चाहिए। मैंने हिन्दी के पाठकों के लिए रोज़ सुबह अंग्रेज़ी से अनुवाद कर मोदी विरोध के लिए नहीं लिखा था बल्कि इस खुशफहमी में लिखा कि हिन्दी का पाठक सक्षम हो। इसमें घंटो लगा दिए। मुझे ठीक ठीक पता था कि मैं यह लंबे समय तक अकेले नहीं कर सकता। मोदी विरोध की सनक नहीं थी। अपने पेश से कुछ ज्यादा प्रेम था इसलिए दांव पर लगा दिया। अपने पेश पर सवाल खड़े करने का एक जोखिम था। अपने लिए रोज़गार के अवसर गंवा देना। फिर भी जीवन में कुछ समय के लिए करके देख लिया। इसका अपना तनाव होता है, जोखिम होता है मगर जो सीखता है वह दुर्लभ है। बटुआ वाले सवाल पूछ कर मैं मोदी समर्थकों के बीच तो छुप सकता हूं लेकिन आप पाठकों के सामने नहीं आ सकता।

मैंने ज़रूर सांप्रदायिकता के ख़िलाफ सबके बीच आकर बोला। आज भी बोलूंगा। आपके भीतर धार्मिक और जातीय पूर्वाग्रह बैठ गया है। आप मशीन बनते जा रहे हैं। मैं फिर से कहता हूं कि धार्मिक और जातीय पूर्वाग्रह से लैस सांप्रदायिकता आपको एक दिन मानव बम में बदल देगी। स्टुडियो में नाचते एंकरों को देख आपको भी लगता होगा कि यह पत्रकारिता नहीं है। बैंकों में गुलाम की तरह काम करने वाली सैंकड़ों महिला अफसरों ने अपने गर्भ गिर जाने से लेकर शौचालय का भय दिखा कर काम कराने का पत्र क्या मुझसे मोदी का विरोध कराने के लिए लिखा था? उनके पत्र आज भी मेरे पास पड़े हैं। मैंने उनकी समस्या को आवाज़ दी और कई बैंक शाखाओं में महिलाओं के लिए अलग से शौचलय बने। मैंने मोदी का एजेंडा नहीं चलाया। वो मेरा काम नहीं था। अगर आप मुझसे यही उम्मीद करते हैं तब भी यही कहूंगा कि एक बार नहीं सौ बार सोच लीजिए।

ज़रूर पत्रकारिता में भी 'अतीत के गुनाहों की स्मृतियां' हैं जिसे मोदी वक्त-बेवक्त ज़दिा करते रहते हैं लेकिन वह भूल जा रहे हैं कि उनके समय की पत्रकारिता का मॉडल अतीत के गुनाहों पर ही आधारित है। मै नहीं मानता कि पत्रकारिता हारी है। पत्रकारिता खत्म हो जाएगी वह अलग बात है। जब पत्रकारिता ही नहीं बची है तो फिर आप पत्रकारिता के लिए मेरी ही तरफ क्यों देख रहे हैं। क्या आपने संपूर्ण समाप्ति का संकल्प लिया है। जब मैं अपनी बात करता हूं तो उसमें वे सारे पत्रकारों की भी बातें हैं जो संघर्ष कर रहे हैं। ज़रूर पत्रकारिता संस्थानों में संचित अनैतिक बलों के कारण पत्रकारिता समाप्त हो चुकी है। उसका बचाव एक व्यक्ति नही कर सकता है। ऐसे में हम जैसे लोग क्या ही कर लेंगे। फिर भी ऐसे काम को सिर्फ मोदी विरोध के चश्मे से देखा जाना ठीक नहीं होगा। यह अपने पेशे के भीतर आई गिरावट का विरोध ज्यादा है। यह बात मोदी समर्थकों को इस दौर में समझनी होगी। मोदी का समर्थन अलग है। अच्छी पत्रकारिता का समर्थन अलग है। मोदी समर्थकों से भी अपील करूगा कि आप गोदी मीडिया का चैनल देखना बंद कर दें। अखबार पढ़ना बंद कर दें। इसके बग़ैर भी मोदी का समर्थन करना मुमकिन है।

बहरहाल, 23 मई 2019 को आई आंधी गुज़र चुकी है लेकिन हवा अभी भी तेज़ चल रही है। नरेंद्र मोदी ने भारत की जनता के दिलो-दिमाग़ पर एकछत्र राज कायम कर लिया है। 2014 में उन्हें मन से वोट मिला था, 2019 में तन और मन से वोट मिला है। तन पर आई तमाम तक़लीफों को झेलते हुए लोगों ने मन से वोट किया है। उनकी इस जीत को उदारता के साथ स्वीकार किया जाना चाहिए। मैं भी करता हूं। जन को ठुकरा कर आप लोकतांत्रिक नहीं हो सकते हैं। उस ख़ुशी में भविष्य के ख़तरे देखे जा सकते हैं लेकिन उसे देखने के लिए भी आपको शामिल होना होगा। यह समझने के लिए भी शामिल होना चाहिए कि आख़िर वह क्या बात है जो लोगों को मोदी बनाती है। लोगों को मोदी बनाने का मतलब है अपने नेता में एकाकार हो जाना। एक तरह से विलीन हो जाना। यह अंधभक्ति कही जा सकती है मगर इसे भक्ति की श्रेष्ठ अवस्था के रूप में भी देखा जाना चाहिए। मोदी के लिए लोगों का मोदी बन जाना उस श्रेष्ठ अवस्था का प्रतीक है। घर-घर मोदी की जगह आप जन-जन मोदी कह सकते हैं।

मैं हमेशा से कहता रहा हूं कि 2014 के बाद से इस देश के अतीत और भविष्य को समझने की संदर्भ बिन्दु(रेफरेंस प्वाइंट) बदल गई है। चुनाव से पहले ही प्रधानमंत्री मोदी नए भारत की बात करने लगे थे। वह नया भारत उनकी सोच का भारत बन गया है। हर जनादेश में संभावनाएं और आशंकाएं होती हैं। इससे मुक्त कोई जनादेश नहीं होता है। जनता ने तमाम आशंकाओं के बीच अगर एक संभावना को चुना है तो इसका मतलब है कि उसमें उन आशंकाओं से निपटने का पर्याप्त साहस भी है। वह भयभीत नहीं है। न तो यह भय का जनादेश है और न ही इस जनादेश से भयभीत होना चाहिए। ऐतिहासिक कारणों से जनता के बीच कई संदर्भ बिन्दु पनप रहे थे। दशकों तक उसने इसे अपने असंतोष के रूप में देखा। बहुत बाद में वह अपने इस अदल-बदल के असंतोष से उकता गई। उसने उस विचार को थाम लिया जहां अतीत की अनैतिकताओं पर सवाल पड़े हुए थे। जनता 'अतीत के असंतोषों की स्मृतियों' से उबर नहीं पाई है। इस बार असंतोष की उस स्मृति को विचारधारा के नाम पर प्रकट कर आई है जिसे नया भारत कहा जा रहा है।

मैंने हमेशा कहा है कि नरेंद्र मोदी का विकल्प वही बनेगा जिसमें नैतिक शक्ति होगी। आप मेरे लेखों में नैतिक बल की बात देखेंगे। बेशक नरेंद्र मोदी के पक्ष में अनैतिक शक्तियों और संसाधनों का विपुल भंडार है। मगर जनता उसे 'अतीत के असंतोष की स्मृतियों' के गुण-दोष की तरह देखती है। बर्दाश्त कर लेती है। नरेंद्र मोदी उस 'अतीत के असंतोष की स्मृतियों' को ज़दिा भी रखते हैं। आप देखेंगे कि वह हर पल इसे रेखांकित करते रहते हैं। जनता को 'अतीत के वर्तमान' में रखते हैं। जनता को पता है कि विपक्ष में भी वही अनैतिक शक्तियां हैं जो मोदी पक्ष में है। विपक्ष को लगा कि जनता दो समान अनैतिक शक्तियों में से उसे भी चुन लेगी। इसलिए उसने बची-खुची अनैतिक शक्तियों का ही सहारा लिया। नरेंद्र मोदी ने उन अनैतिक शक्तियों को भी कमज़ोर और खोखला भी कर दिया। विपक्ष के नेता बीजेपी की तरफ भागने लगे। विपक्ष मानव और आर्थिक संसाधन से खाली होने लगा। दोनों का आधार अनैतिक शक्तियां ही थीं। लेकिन इसी परिस्थिति ने विपक्ष के लिए नया अवसर उपलब्ध कराया। उसे चुनाव की चिन्ता छोड़ अपने राजनीतिक और वैचारिक पुनर्जीवन को प्राप्त करता। उसने नहीं किया।

विपक्ष को अतीत के असंतोष के कारणों के लिए माफी मांगनी चाहिए थी। नया भरोसा देना था कि अब से ऐसा नहीं होगा। इस बात को ले जाने के लिए तेज़ धूप में पैदल चलना था। उसने यह भी नहीं किया। 2014 के बाद चार साल तक घर बैठे रहे। जनता के बीच नहीं जनता की तरह नहीं गए। उसकी समस्याओं पर तदर्थ रूप से बोले और घर आकर बैठ गए। 2019 आया तो उसने बची-खुची अनैतिक शक्तियों के समीकरण से वह एक विशालकाय अनैतिक शक्तिपुंज से टकराने की ख्वाहिश पाल बैठा। विपक्ष को समझना था कि अलग-अलग दलों की राजनीतिक प्रासंगिकता समाप्त हो चुकी है। समाजवादी पार्टी और बहुजन समाज पार्टी या राष्ट्रीय जनता दल के ज़रिए लोकतंत्र में जो सामाजिक संतुलन आया था उसकी आज कोई भूमिका नहीं रही।

बेशक इन दलों ने समाज के पिछड़े और वंचित तबकों को सत्ता-चक्र घुमाकर शीर्ष पर लाने का ऐतिहासिक काम किया लेकिन इसी क्रम में वे दूसरे पिछड़े और वंचितों को भूल गए। इन दलों में उनका प्रतिनिधित्व उसी तरह बेमानी हो गया जिस तरह अन्य दलों में होता है। अब इन दलों की प्रासंगिकता नहीं बची है तो दलों को भंग करने का साहस भी होना चाहिए। अपनी पुरानी महत्वकांक्षाओं को भंग कर देना था। भारत की जनता अब नए विचार और नए दल का स्वागत करेगी तब तक वह नरेंद्र मोदी के विचार पर चलेगी।

समाज और राजनीति का हिन्दूकरण हो गया है। यह स्थायी रूप से हुआ है मैं नहीं मानता। उसी तरह जैसे बहुजन शक्तियों का उभार स्थायी नहीं था इसी तरह से यह भी नहीं है। यह इतिहास का एक चक्र है जो घूमा है। जैसे मायावती सवर्णों के समर्थन से मुख्यमंत्री बनी थी उसी तरह आज संघ बहुजन के समर्थन से हिन्दू राष्ट्र बना रहा है। जो सवर्ण थे वो अपनी जाति की पूंजी लेकर कभी सपा बसपा और राजद के मंचों पर अपना सहारा ढूंढ रहे थे। जब वहां उनकी वहां पूछ बढ़ी तो बाकी बचा बहुजन सर्वजन के बनाए मंच पर चला गया।

बहुजन राजनीति ने कब जाति के ख़िलाफ राजनीतिक अभियान चलाया। जातियों के संयोजन की राजनीति थी तो संघ ने भी जातियों के संयोजन की राजनीति खड़ी कर दी। बेशक क्षेत्रिय दलों ने बाद में विकास की भी राजनीति की और कुछ काम भी किया लेकिन राष्ट्रीय स्तर के लिए अपनी भूमिका को हाईवे बनाने तक सीमित कर गए। चंद्रभान प्रसाद की एक बात याद आती है। वह कहते थे कि मायावती क्यों नहीं आर्थिक मुद्दों पर बोलती हैं, क्यों नहीं विदेश नीति पर बोलती हैं। यही हाल सारे क्षेत्रीय दलों का है। वह प्रदेश की राजनीति तो कर लेते हैं मगर देश की राजनीति नहीं कर पाते हैं।

बहुजन के रूप में उभर कर आए दल अपनी विचारधारा की किताब कब का फेंक चुके हैं। उनके पास अंबेडकर जैसे सबसे तार्किक व्यक्ति हैं लेकिन अबेंडकर अब प्रतीक और अहंकार का कारण बन गए हैं। छोटे-छोटे गुट चलाने का कारण बन गए हैं। हमारे मित्र राकेश पासवान ठीक कहते हैं कि दलित राजनीति के नाम पर अब संगठनों के राष्ट्रीय अध्यक्ष ही मिलते हैं, राजनीति नहीं मिलती है। बहुजन राजनीति एक दुकान बन गई है जैसे गांधीवाद एक दुकान है। इसमें विचारधारा से लैस व्यक्ति आज तक राष्ट्रीय स्तर पर एक राजनैतिक विकल्प नहीं बना पाया। वह दल नहीं बनाता है। अपने हितों के लिए संगठन बनाता है। अपनी जाति की दुकान लेकर एक दल से दूसरे दल में आवागमन करता है। उसके भीतर भी अहंकार आ गया। वह बसपा या बहुजन दलों की कमियों पर चुप रहने लगा।

वह अहंकार ही था कि मेरे जैसों के लिखे को भी जाति के आधार पर खारिज किया जाने लगा। मैं अपनी प्रतिबद्धता से नहीं हिला लेकिन प्रतिबद्धता की दुकान चलाने वाले अंबेडकर के नाम का इस्तमाल हथियार की तरह करने लगे। वे लोगों को आदेश देने लगे कि किसे क्या लिखना चाहिए। जिस तरह भाजपा के समर्थक राष्ट्रवाद का सर्टिफिकेट बांटते हैं उसी तरह अंबेडकरवादियों में भी कुछ लोग सर्टिफिकेट बांटने लगे हैं। हमें समझ लेना चाहिए कि बहुजन पक्ष में कोई कांशीराम नहीं है। कांशीराम की प्रतिबद्धता का मुकाबला नहीं है। वह वैचारिक प्रतिबद्धता थी। अब हमारे पास प्रकाश आंबेडकर हैं जो अंबेडकर के नाम पर छोटे मकसद की राजनीति करते हैं। यही हाल लोहिया का भी हुआ है। जो अंबेडकर को लेकर प्रतिबद्ध हैं उनकी भी हालत गांधी को लेकर प्रतिबद्ध रहने वाले गाधीवादियों की तरह है। दोनों हाशिये पर जीने के लिए अभिशप्त हैं। विकल्प गठजोड़ नहीं है। विकल्प विलय है। पुनर्जीवन है। अगले चुनाव के लिए नहीं है। भारत के वैकल्पिक भविष्य के लिए है।

आपने देखा होगा कि इन पांच सालों में मैंने इन दलों पर बहुत कम नहीं लिखा। लेफ्ट को लेकर बिल्कुल ही नहीं लिखा। मैं मानता हूं कि वाम दलों की विचारधारा आज भी प्रासंगिक हैं मगर उनके दल और उन दलों में अपना समय व्यतीत कर रहा राजनीतिक मानवसंसाधन प्रासंगिक नहीं हैं। उसकी भूमिका समाप्त हो चुकी है। वह सड़ रहा है। उनके पास सिर्फ कार्यालय बचे हैं। काम करने के लिए कुछ नहीं बचा है। वाम दलों के लोग शिकायत करते रहते थे कि आपके कार्यक्रम में लेफ्ट नहीं होता है। क्योंकि दल के रूप में उसकी भूमिका समाप्त हो चुकी थी। बेशक महाराष्ट्र में किसान आंदोलन खड़ा करने का काम बीजू कृष्णन जैसे लोगों ने किया। यह उस विचारधारा की उपयोगिता थी। न कि दल की। दल को भंग करने का समय आ गया है। नया सोचने का समय आ गया है। मैं दलों की विविधता का समर्थक हूं लेकिन उपयोगिता के बग़ैर वह विविधता किसी काम की नहीं होगी। यह सारी बातें कांग्रेस पर भी लागू होती है। भाजपा के कार्यकर्ताओं में आपको भाजपा दिखती है। कांग्रेस के कार्यकर्ताओं में आपको कांग्रेस छोड़ सबकुछ दिखता है। कांग्रेस चुनाव लड़ना छोड़ दे या चुनाव को जीवन-मरण के प्रश्न की तरह न लड़े। वह कांग्रेस बने।

कांग्रेस नेहरू का बचाव नहीं कर सकी। वह पटेल से लेकर बोस तक का बचाव नहीं कर सकी। आज़ादी की लड़ाई की विविधता और ख़ूबसूरती से जुड़ी 'अतीत की स्मृतियों' को ज़दिा नहीं कर पाई। गांधी के विचारों को खड़ा नहीं कर पाई। आज आप भाजपा के एक सामान्य कार्यकर्ता से दीनदयाल उपाध्याय के बारे में ग़लत टिप्पणी कर दीजिए वह अपनी तरह से सौ बातें बताएंगे, पांच साल में कांग्रेस पार्टी नेहरू को लेकर समानांतर विमर्श पैदा नहीं कर पाई, मैं इसी एक पैमाने से कांग्रेस को ढहते हुए देख रहा था। राजनीति विचारधारा की ज़मीन पर खड़ी होती है, नेता की संभावना पर नहीं। एक ही रास्ता बचा है। भारत के अलग अलग राजनीतिक दलों में बचे मानव संसाधान को अपना अपना दल छोड़ कर किसी एक दल में आना चाहिए। जहां विचारों का पुनर्जन्म हो, नैतिक बल का सृजन हो और मानव संसाधन का हस्तांतरण। यह बात 2014 में भी लोगों से कहा था। फिर खुद पर हंसी आई कि मैं कौन सा विचारक हूं जो यह सब कह रहा हूं। आज लिख रहा हूं।

इसके बाद भी विपक्ष को लेकर सहानुभूति क्यों रही। हालांकि उनके राजनीतिक पक्ष को कम ही दिखाया और उस पर लिखा बोला क्योंकि 2014 के बाद हर स्तर पर नरेंद्र मोदी ही प्रमुख हो गए थे। सिर्फ सरकार के स्तर पर ही नहीं, सांस्कृतिक से लेकर धार्मिक स्तर पर मोदी के अलावा कुछ दिखा नहीं और कुछ था भी नहीं। जब भारत का 99 प्रतिशत मीडिया लोकतंत्र की मूल भावना को कुचलने लगा तब मैंने उसमें एक संतुलन पैदा करने की कोशिश की। असहमति और विपक्ष की हर आवाज़ का सम्मान किया। उसका मज़ाक नहीं उड़ाया। यह मैं विपक्षी दलों के लिए नहीं कर रहा था बल्कि अपनी समझ से भारत के लोकतंत्र को शर्मिंदा होने से बचा रहा था। मुझे इतना बड़ा लोड नहीं लेना चाहिए था क्योंकि यह मेरा लोड नहीं था फिर भी लगा कि हर नागरिक के भीतर और लोकतंत्र के भीतर विपक्ष नहीं होगा तो सबकुछ खोखला हो जाएगा। मेरी इस सोच में भारत की भलाई की नीयत थी।

नरेंद्र मोदी की प्रचंड जीत हुई है। मीडिया की जीत नहीं हुई है। हर जीत में एक हार होती है। इस जीत में मीडिया की हार हुई है। उसने लोकतांत्रिक मर्यादाओं का पालन नहीं किया। आज गोदी मीडिया के लोग मोदी को मिली जीत के सहारे ख़ुद की जीत बता रहे हैं। दरअसल उनके पास सिर्फ मोदी बचे हैं। पत्रकारिता नहीं बची है। पत्रकारिता का धर्म समाप्त हो चुका है। मुमकिन है भारत की जनता ने पत्रकारिता को भी खारिज कर दिया हो। उसने यह भी जनादेश दिया हो कि हमें मोदी चाहिए, पत्रकारिता नहीं। इसके बाद भी मेरा यकीन उन्हीं मोदी समर्थकों पर है। वे मोदी और मीडिया की भूमिका में फर्क देखते हैं। समझते हैं। शायद उन्हें भी ऐसा भारत नहीं चाहिए जहां जनता का प्रतिनिधि पत्रकार अपने पेशवर धर्म को छोड़ नेता के चरणों में बिछा नज़र आए। मुझे अच्छा लगा कि कई मोदी समर्थकों ने लिखा कि हम आपसे असहमत हैं मगर आपकी पत्रकारिता के कायल हैं। आप अपना काम उसी तरह से करते रहिएगा। ऐसे सभी समर्थकों का मुझ में यकीन करने के लिए आभार। मेरे कई सहयोगी जब चुनावी कवरेज के दौरान अलग-अलग इलाकों में गए तो यही कहा कि मोदी फैन भी तुम्हीं को पढ़ते और लिखते हैं। संघ के लोग भी एक बार चेक करते हैं कि मैंने क्या बोला। मुझे पता है कि रवीश नहीं रहेगा तो वे रवीश को मिस करेंगे।

दो साल पहले दिल्ली में रहने वाले अस्सी साल के एक बुजुर्ग ने मुझे छोटी सी गीता भेजी। लंबा सा पत्र लिखा और मेरे लिए लंबे जीवन की कामना की। आग्रह किया कि यह छोटी सी गीता अपने साथ रखूं। मैंने उनकी बात मान ली। अपने बैग में रख लिया। जब लोगों ने कहा तो अब आप सुरक्षित नहीं हैं। जान का ख्याल रखें तो आज उस गीता को पलट रहा था। उसका एक सूत्र आपसे साझा कर रहा हूं।

अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि, ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि।।